बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 149

भ्रामक राजकोषीय घाटा

केंद्र सरकार की उधारी के बारे में बीते कुछ वर्ष में लगातार सवाल उठाए गए हैं। अब यह सिलसिला चरम पर है। जैसा कि इस समाचार पत्र ने भी प्रकाशित किया था, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सीएजी) ने संसद के दोनों सदनों तथा 15वें वित्त आयोग को बताया था कि केंद्रीय बजट के आंकड़ों में केंद्र सरकार की बजट से इतर देनदारियों को शामिल नहीं किया गया। सीएजी ने कहा कि वह इन आंकड़ों को बजट अनुमान का हिस्सा बनाना चाहता है। हालांकि, सरकार का कहना है कि वह पहले ही 2019-20 के बजट में जरूरत से अधिक प्रावधान कर चुकी है क्योंकि मूलधन की अदायगी के प्रावधान और बजट से परे ली गई उधारी के ब्याज भुगतान का प्रावधान भी बजट के माध्यम से किया जा रहा है।

सरकार का यह भी कहना है कि बजट से इतर ली गई उधारी को राजकोषीय घाटे के अनुमान में शामिल करने की कोई औपचारिक जरूरत नहीं है। इस मामले में सरकार काफी हद तक सही है लेकिन दूसरी ओर औपचारिक जरूरत की अपील करना इस संदर्भ में एक कमजोर दलील है। आखिरकार वित्त आयोग के पास यह अधिकार है कि वह सरकार द्वारा प्रयोग की जाने वाली औपचारिक परिभाषाओं को बदल सके। संभव है कि सरकार प्रक्रियागत मामले में सही हो लेकिन सीएजी के पास भी यह शिकायत करने का पर्याप्त वजह है कि राजकोषीय घाटे का आंकड़ा, वित्त वर्ष के दौरान सरकारी व्यय और सरकार के ऋण व्यवहार को भलीभांति परिलक्षित नहीं करता। उसका कहना है कि राजकोषीय घाटे का वास्तविक स्तर 6 फीसदी के आसपास है जबकि सरकार ने 2019-20 के बजट आंकड़ों में इसके 3.3 फीसदी रहने का दावा किया है। सरकार उचित ही यह शिकायत कर सकती है कि राजकोषीय घाटे का वक्तव्य मौजूदा स्वीकार्य परिभाषा के अनुरूप है। परंतु इस बात का विश्वसनीय दावा नहीं किया जा सकता है कि राजकोषीय घाटे का आंकड़ा ही राजकोषीय विवेक का आकलन करने की दृष्टि से उचित है।

इस कठिनाई को दूर करने का सही तरीका होगा राजकोषीय घाटे के बजाय सरकारी क्षेत्र की उधारी की जरूरतों को आंकना। इसके अलावा सरकारी कर्ज के प्रवाह के चर को आंकना जो न केवल बजट व्यय और बजट से इतर की देनदारी को ही नहीं बल्कि सरकार की अन्य आकस्मिक देनदारियों को भी ध्यान में रखता है। इससे इस बात का पारदर्शी परिदृश्य सामने आएगा कि केंद्र सरकार भविष्य की पीढ़ियों पर किस हद तक कर्ज का बोझ डाल रही है। साथ ही यह भी पता चल सकेगा कि सरकारी उधारी के कारण कितना निजी निवेश में किस कदर कमी आ रही है। देश के सार्वजनिक वित्त के स्थायित्व की दृष्टि से यही दोनों सबसे अधिक मायने रखते हैं। फिलहाल तो यह आंकड़ा अवांछित रूप से बढ़ा हुआ होगा। सरकार ने सरकारी उपक्रमों मसलन भारतीय खाद्य निगम आदि का इस्तेमाल इस तरीके से करना शुरू किया है जैसा कि पहले सोचा भी नहीं गया था। उनकी सॉवरिन गारंटी का अर्थ यह है कि वे बाजार से कर्ज ले सकते हैं और खाद्य सब्सिडी जैसी सरकार की व्यय प्रतिबद्धताओं की भरपाई कर सकते हैं। इस प्रकार राजकोषीय घाटा सरकार की वास्तविक राजकोषीय स्थिति को छिपा लेता है।

वित्त आयोग शायद इस व्यवहार को सामने रखेगा और इस बात पर नए सिरे से विचार करेगा कि सरकारी व्यय और उधारी का अंकगणित किस प्रकार पेश किया जा रहा है। ऐसा पुनर्आकलन न केवल सरकार को सरकारी निवेश और बचत की योजना में मदद करेगा बल्कि व्यापक निवेश समुदाय की दृष्टि से भी यह अहम होगा क्योंकि उसे राज्य के चयन की स्पष्ट समझ और सरकारी ऋण बाजार की भविष्य की स्थिति के बारे में उचित जानकारी की जरूरत है।

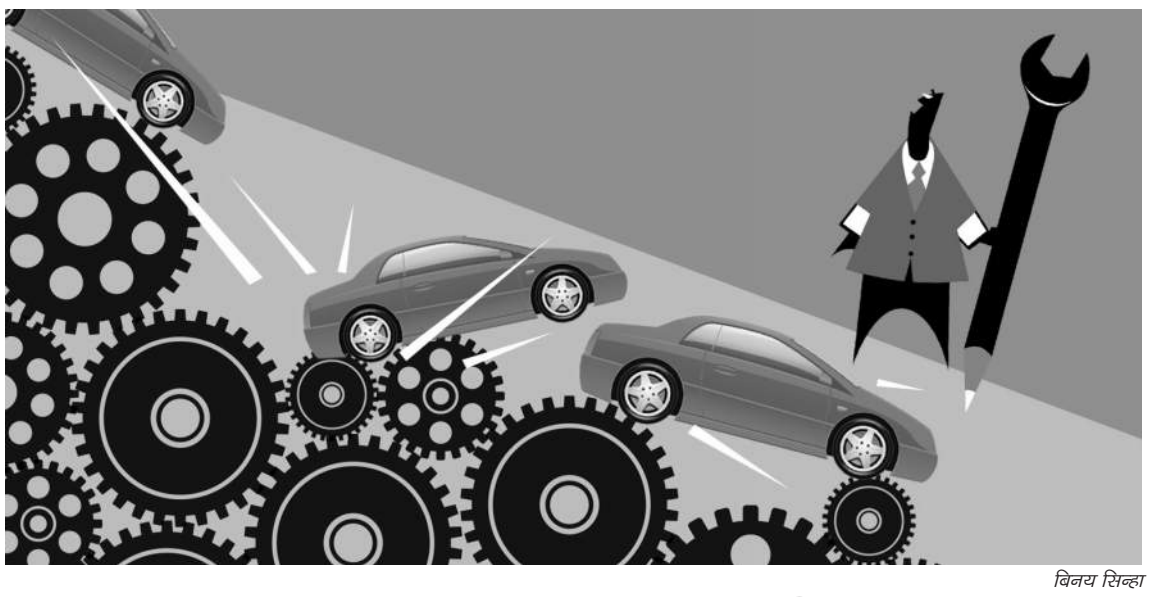

बिनय सिन्हा

वाहन उद्योग में गिरावट और औद्योगिक नीति

जरूरत इस बात की है कि इस क्षेत्र को वृद्धि का वाहक बनाया जाए और इसे किसी भी तरह के पतन की आशंकाओं से बचाकर रखा जाए। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं **श्याम पोनप्पा**

औद्योगिक नीति की बात करते ही तरह-तरह की प्रतिक्रियाएं सामने आने लगती हैं। मुक्त बाजार के हिमायती जहां इसकी आलोचना करते हैं, वहीं सरकारी हस्तक्षेप में यकीन करने वाले इसके समर्थन में उतर आते हैं। परंतु जैसा कि अर्थशास्त्री दानी रोड्रिक ने एक दशक पहले कहा था, हकीकत इन दोनों से अलग है। विकासशील देशों मे आगे की राह न तो तगड़े सरकारी हस्तक्षेप से निकलती है और न ही सरकार को अर्थव्यवस्था से पूरी तरह दूर रखने से। हालांकि कई बार आयात में रियायत, नियोजन और सरकारी स्वामित्व के कारणों से सफलता मिली है। भारत में अंतरिक्ष शोध संगठन इसरो इसका उदाहरण है। परंतु अक्सर ऐसी सफलताएं अतिरंजना के चलते या लचीलेपन की कमी के चलते नाकामी और संकट में तब्दील हो गई हैं। इसी प्रकार, उदारीकरण के कारण भी निर्यातकों, वित्तीय बिचौलियों तथा कुछ कुशल कर्मियों को लाभ मिला लेकिन अक्सर यह व्यापक आर्थिक वृद्धि सुनिश्चित कर पाने में नाकाम रही।

इस मुद्दे पर भी मतभेद नजर आते हैं कि विकास की प्रक्रिया में तुलनात्मक बढ़त पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए या फिर समर्थन और उद्योग संरक्षण को विस्तार के साथ ढांचागत बदलावों की दिशा में प्रयास करना चाहिए। उदाहरण के लिए देश में इलेक्ट्रॉनिक्स और दूरसंचार उपकरण बनाने का मामला। सन 2009 में लंदन स्थित ओवरसीज डेवलपमेंट इंस्टीट्यूट ने विश्व बैंक के मुख्य अर्थशास्त्री और पेइचिंग विश्वविद्यालय के आर्थिक शोध केंद्र के पूर्व निदेशक जस्टिन यीफू लिन और कैंब्रिज विश्वविद्यालय के हा-चुन चांग के बीच एक बहस आयोजित की। लिन तुलनात्मक बढ़त के पक्ष में तो चांग उद्योग जगत को संरक्षण के पक्ष में अपनी बात रख रहे थे। दिलचस्प बात है कि दोनों ने मजबूत सरकारी हस्तक्षेप की हिमायत की, हालांकि उनके तरीके अलग थे। लिन जहां तुलनात्मक बढ़त की सुविधा देने की बात कर रहे थे, वहीं चांग का कहना था कि इसे देश के उद्योग जगत को उन्नत बनाने के क्षेत्र में आधार की तरह इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

औद्योगिक नीति की कई व्याख्याएं हैं। बुनियादी ढांचे की एक ऊर्ध्वाधर शैली है, जो अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं के लिए एक ऊंची उठती लहर की तरह होती है। लंबवत स्थिति के लिए राज्य नियोजन और नियंत्रण इसके विपरीत होता है। सरकारी नियमन और सहयोग का मिश्रण इसके बीच की स्थिति है जहां कर प्रोत्साहन, श्रम नियमन, वित्तीय कारण, भूमि आवंटन एवं अधिग्रहण के अलावा निजी क्षेत्र के साथ तालमेल शामिल होता है। इन्हें उद्योग या विनिर्माण तक सीमित किया जा सकता है या फिर अधिक व्यापक करके देखा जाए तो इसे तमाम आर्थिक गतिविधियों से जोड़कर देखा जा सकता है जिसमें कृषि, डेरी और सेवाएं शामिल हैं। ऐतिहासिक तौर पर देखें तो औद्योगिक नीति का आंशिक पालन हर जगह हुआ है। अमेरिका में रीगन के कार्यकाल में डिफेंस एडवांस्ड रिसर्च प्रोजेक्ट्स एजेंसी (डीएआरपीए) ने सरकारी और निजी प्रतिभागियों का संगठन स्थापित किया ताकि सरकार और निजी क्षेत्र के भागीदारों का समूह बनाकर समन्वित प्रयास किए जा सकें।

इसी प्रकार सेमीकंडक्टर विनिर्माण प्रौद्योगिकी समूह (सेमाटेक) में इंटेल और टैक्सस इंस्ट्रूमेंट्स जैसी कंपनियों के साथ मिलकर अमेरिकी सेमीकंडक्टर उद्योग में नई जान फूंकने के लिए विनिर्माण लागत और उत्पाद की कमियां दूर करने का प्रयास किया गया। इसी प्रकार विकसित मशीनी उपकरणों और स्वचालन उद्योग के लिए द नैशनल सेंटर फॉर मैन्युफैक्चरिंग साइंसेज (एनसीएमएस) का गठन किया गया। एक अन्य परियोजना का संबंध अमेरिका की घटती प्रतिस्पर्धी क्षमता के कारणों का पता लगाने से था। साथ ही इसके अमेरिकी दबदबा दोबारा कायम करने के तरीके तलाशने की बात भी शामिल थी।

इनका निष्कर्ष यह था कि अमेरिका अपनी तकनीक आधारित प्रतिस्पर्धी क्षमता गंवा रहा है क्योंकि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद निर्णय लेने की क्षमता तकनीक आधारित योजना से वित्त आधारित नियोजन की ओर स्थानांतरित हो गई। बाद वाली स्थिति में सफलता का आकलन वित्तीय प्रतिफल से किया जाता जबकि तकनीक आधारित नियोजन में लक्ष्य होता तकनीक की सहायता से प्रतिस्पर्धी बढ़त हासिल करना और ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करना। अमेरिका में बुश प्रशासन ने सन 1990 में इस परियोजना को रद्द कर दिया क्योंकि इसे मुक्त बाजार के समय में औद्योगिक नीति में हस्तक्षेप करने वाला माना जा रहा था।

औद्योगिक नीति और भारत का वाहन क्षेत्र

वर्ष 2006 में भारी उद्योग मंत्रालय ने वाहन क्षेत्र के मशविरे से 2002 की एक पहल पर काम करना शुरू किया। स्वचालन मिशन योजना 2006-2016 एक ऐसा कार्यक्रम था जो सरकारी एजेंसियों, उद्योग जगत के प्रतिभागियों और अकादमिक जगत तक विस्तारित था। इसका लक्ष्य था देश को वाहन उद्योग में वैश्विक गढ़ बनाना। 2008 और 2013-14 की गिरावट के बावजूद यह सफल रहा और 2016 तक इस क्षेत्र के रोजगार एक करोड़ से बढ़कर 3.2 करोड़ हो गये। इसका अगला चरण 2016 से 2026 तक प्रभावी है। इस अवधि में कुल उत्पादन में निर्यात की भागीदारी बढ़ाकर 35 से 40 फीसदी करने की बात शामिल है। इस दौरान इस क्षेत्र के रोजगार बढ़ाकर 6.5 करोड़ करने का लक्ष्य है। गत वर्ष इसकी गति में थोड़ी गिरावट आई है लेकिन इसके लिए कुछ विपरीत कारक उत्तरदायी हैं। इसमें डीजल और इलेक्ट्रिक वाहनों को लेकर नीतियों में भ्रम और अनिश्चितता बड़ी वजह रहे। साथ ही कारोबारी तनाव, जीडीपी वृद्धि में गिरावट, उत्सर्जन नीतियों और करों के कारण लागत में बढ़ोतरी तथा वित्तीय क्षेत्र में संकट के चलते ऐसा हुआ है।

वाहन क्षेत्र में धीमेपन और बड़ी तादाद में नौकरियां जाने की आशंका के बीच क्या तत्काल नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है। कुछ पर्यवेक्षकों को ऐसा लगता है जबकि अन्य मंदी को चक्रीय बताकर खारिज करते हैं। वे मंदी और निराशा की खबरों को भी अतिरंजित करार देते हैं। हमें यह मानना होगा कि भारत की तुलना ओईसीडी के बाजारों से नहीं की जा सकती है। उदाहरण के लिए देश में सन 2017 में प्रति 1,000 में से 27 लोगों के पास कार थी। ओईसीडी देशों में यह आंकड़ा सैकड़ों में है। जाहिर है अगर उद्योग जगत मुनाफे में रहा और नया निवेश आया तो रोजगार में अपार वृद्धि हो सकती है। हालांकि इस बीच पर्यावरण प्रभाव, ईंधन आयात और अधिक सड़कें बनाने का काम भी करना होगा। इसमें दो राय नहीं कि भारत को विकास के इंजन के रूप में वाहन उद्योग की आवश्यकता है। चूंकि यह क्षेत्र अर्थव्यवस्था के कई अन्य क्षेत्रों में रोजगार उत्पन्न करता है इसलिए इसमें नाकामी का असर तमाम क्षेत्रों पर पड़ सकता है। दूरसंचार, विनिर्माण और वित्त क्षेत्र की तरह इसे पतन से बचाना होगा।

कॉर्पोरेट मुनाफा 2008 में जीडीपी के 7.8 फीसदी से घटकर 2018 में जीडीपी के 3 फीसदी पर आ गया। ऐसे में सरकार को जमीनी हकीकतों को समझना होगा। हमारी प्राथमिक आवश्यकता स्थिर और सहयोगी नियामकीय माहौल की है। इलेक्ट्रिक वाहन या डीजल वाहनों आदि की नीतियों जैसे नीतिगत बदलाव समावेशी मशविरे के जरिये लिए जाने चाहिए।

प्रधानमंत्री मोदी को भी करनी होगी महालनोबिस की तलाश

सम सामयिक

टीसीए श्रीनिवास-राघवन

कुछ दिनों पहले आर्थिक पत्रकार पूजा मेहरा ने सवाल उठाया था कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को आर्थिक मोर्चे पर मदद करने वाला अफसरशाह कौन होगा? पुराने प्रधानमंत्रियों के समय ए एन वर्मा, मोंटेक सिंह आहलूवालिया, विमल जालान, वाई वी रेड्डी और विजय केलकर जैसे अफसरशाह आर्थिक मुद्दों पर मददगार भूमिका निभाते रहे हैं। मोदी की ही तरह बुद्धिजीवियों से असहज महसूस करने वालीं इंदिरा गांधी ने भी पी एन हक्सर की सेवाएं ली थीं जिन्होंने उनकी राजनीतिक जरूरतों को आर्थिक कलेवर देने का काम किया था।

पूजा के सवाल का मतलब यह जानना था कि मोदी को आर्थिक सलाह कौन देता है? पिछले पांच साल से भारतीय अर्थव्यवस्था के तमाम प्रेक्षकों को यह सवाल परेशान किया हुआ है लेकिन अभी तक इसका संतोषजनक जवाब नहीं मिला है। लेकिन यह सवाल जरूरी होते हुए भी पर्याप्त नहीं है। मेरी नजर में अधिक मौजूं सवाल यह होता कि मोदी का महालनोबिस कौन बनेगा? पी सी महालनोबिस एक अर्थशास्त्री एवं सांख्यिकीविद थे जिन्होंने जवाहरलाल नेहरू की आर्थिक सोच को जमीनी रूप देने में अहम भूमिका निभाई थी। उन्होंने दूसरी पंचवर्षीय योजना का आर्थिक मॉडल विकसित किया था जो आर्थिक वृद्धि के लिहाज से काफी सफल रहा था।

इससे जुड़ी एक कहानी है। यह वाकया भारत की मौजूदा आर्थिक संताप से काफी मेल खाता है। पहले आम चुनाव में नेहरू की जीत के बाद के चार वर्षों में आर्थिक प्रगति की दिशा में बहुत कुछ नहीं हो पाया था। पर्याप्त रोजगार नहीं पैदा हो पा रहे थे और मुद्रास्फीति भी बढ़ रही थी। विदेशी मुद्रा का भंडार कम हो रहा था। बचत दर महज पांच फीसदी रह गई थी। राजस्व के स्थिर होने के कारण बजट में भी खास गुंजाइश नहीं रह गई थी। निजी क्षेत्र ने यह कहते हुए अपने हाथ खड़े कर दिए थे कि निवेश के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। बैंक भी छिटपुट लोगों को छोड़कर कर्ज देने से मना कर रहे थे। राजनीतिक तौर पर वह समय नेहरू के लिए निर्विवाद नेता के तौर पर स्थापित होने का था। लेकिन बदले हुए हालात में पार्टी नेता दबे जुबान में शिकायत करने लगे। काफी कुछ मोदी की ही तरह नेहरू के समय भी हर कोई अपना सब्र खो रहा था। ऐसी स्थिति में ही कांग्रेस ने 1955 में हुए अवाडी अधिवेशन में एक बेहद अहम प्रस्ताव पारित किया। उस प्रस्ताव में सरकार से अर्थव्यवस्था की राह प्रशस्त करने को कहा गया था।

लेकिन उसके बाद यह समस्या खड़ी थी कि आगे क्या किया जाए और जो भी किया जाना है उसके लिए पैसे कहां से आएंगे? ऐसी स्थिति में नेहरू ने पहले सवाल का जवाब पाने के लिए महालनोबिस से संपर्क साधा और दूसरे जवाब के तौर पर उद्योगपति टी टी कृष्णमचारी को अपना वित्त मंत्री बनाया। जहां महालनोबिस ने आर्थिक वृद्धि का खाका तैयार किया वहीं कृष्णमचारी ने उसके लिए जरूरी पैसे जुटाए। इस तरह दूसरी पंचवर्षीय योजना अस्तित्व में आई और उसने देश को अच्छी वृद्धि दी। सवाल खड़ा होता है कि प्रधानमंत्री मोदी की अगुआई वाली राजग-2 सरकार के लिए यह काम कौन करेगा? कृष्णमचारी की तरह राजस्व जुटाने के काम के लिए जहां निर्मला सीतारमण एकदम माकूल हैं, वहीं आप उनसे महालनोबिस का दायित्व निभाने की उम्मीद नहीं कर सकते हैं। वह पूरी तरह ईमानदार हैं और अपने दायित्व के निर्वहन में समर्पित रहती हैं। वह असरदार होने के साथ अलोकप्रिय भी होंगी लेकिन एक बढ़िया वित्त मंत्री से इसी की अपेक्षा भी होती है।

लेकिन निवेश जुटा पाने में नाकाम रहने पर सीतारमण या किसी भी वित्त मंत्री को दोषी ठहराना मूर्खतापूर्ण होगा क्योंकि निवेश कई ऐसे पहलुओं पर निर्भर होता है जो अकेले वित्त मंत्री नहीं संभालता है। वास्तव में, यह काम मूल रूप से प्रधानमंत्री पर निर्भर करता है।

निवेश का माहौल बनाने के लिए हमेशा ही एक नए आर्थिक नजरिये और एक पूरी तरह तरोताजा परिप्रेक्ष्य की जरूरत होती है। वर्ष 1958-65 और 1992-96 का दौर इसकी तसदीक करता है। मूलत: इस तरह का नजरिया वितरण को पीछे रखता है और वृद्धि को आगे जगह देता है।

मोदी को यहीं पर अपनी भूमिका निभानी है। उन्हें अपने पहले कार्यकाल में अपनाई गई उस नीति को तिलांजलि देने की जरूरत है जो सुदृढ़ीकरण से जुड़ी थी। अब उनके लिए नेहरू का अनुसरण करने और वृद्धि की राह पर चलने का वक्त आ गया है। उसके लिए उन्हें अपने परिचित दायरे से बाहर की समझदारी की जरूरत है। उन्हें ऐसे नए विचारों की जरूरत है जो तार्किक रूप से सोचने की क्षमता रखने वाले लोगों के दिमाग से निकला हो। उन्हें चिंतकों को लेकर अपना संदेह परे रखते हुए किसी ऐसे व्यक्ति को तलाशना चाहिए जो संप्रग के दस वर्षों के शासन के दौरान बने गड्ढे से देश को बाहर निकालने में मदद करे। इस गड्ढे में आर्थिक शासन संबंधी नियमों को काफी शिथिल कर दिया गया था और सीतारमण उन्हें दुरुस्त कर सकती हैं। लेकिन खुद मोदी को भी राजग-2 सरकार के लिए समुचित उत्कृष्टता कायम करने के लिए आसपास देखना चाहिए।

जब नेहरू ने महालनोबिस को आर्थिक योजना बनाने का काम सौंपा तो वह उन दिनों के चलन के खिलाफ था। उस समय आर्थिक गतिविधियों में राज्य की भूमिका महज नियामकीय एवं सीमांत ही होती थी लेकिन आज इसके विपरीत हालात हैं।

मोदी को भी आज के समय में अवाडी जैसे ही एक प्रस्ताव की जरूरत है लेकिन उसकी विषयवस्तु एकदम उलट होनी चाहिए। उस प्रस्ताव में यह कहा जाए कि राज्य आर्थिक गतिविधियों से खुद को पूरी तरह अलग कर लेगा क्योंकि अब वह खरा नहीं उतर सकता है। जिस तरह नेहरू ने राज्य को अग्रणी शक्ति बनाया, उसी तरह मोदी को भी वृद्धि के लिए निजी क्षेत्र को अग्रणी भूमिका देनी होगी। यह नेहरू की विरासत को पूरी तरह पलटने जैसा होगा और मोदी को तो यह काम खासा पसंद है।

कानाफूसी

दिलचस्प सवाल

एक ओर जहां देश सरकार द्वारा जम्मू कश्मीर को विशेष दर्जा देने वाले संविधान के अनुच्छेद 370 को संशोधित किए जाने पर गंभीर चर्चा में व्यस्त है वहीं कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने इसका मनोरंजक पहलू तलाश लिया है। एक व्यक्ति ने ट्विटर पर सवाल पूछा कि अगर कोई कश्मीर में हाउसबोट खरीदना चाहे तो उसे आवास ऋण लेना होगा या वाहन ऋण? ऐसे में एक कर सलाहकार ने जवाब दिया कि इस मामले को केरल में हल किया जा चुका है। वहीं बैंकिंग में रुचि रखने वाले एक व्यक्ति ने रोचक जवाब दिया कि यह एक आवास ऋण होगा जिसकी दर 'फ्लोटिंग' रखी जाएगी। गौरतलब है कि संसद के दोनों सदनों में विधेयक के पारित होने के बाद बुधवार को राष्ट्रपति ने भी हस्ताक्षर कर दिए हैं। यह विधेयक अब कानून का रूप ले चुका है। इसके साथ ही जम्मू कश्मीर तथा लद्दाख अलग-अलग केंद्र शासित प्रदेश बन गए हैं।

माफी कराएगी वापसी

कांग्रेस की मध्य प्रदेश इकाई ने बागियों को पार्टी में वापस लौटने का एक अवसर देने का निश्चय किया है। परंतु इसके लिए पार्टी ने एक पूर्व शर्त रखी है। पार्टी सूत्रों के मुताबिक पिछले वर्ष विधानसभा चुनाव के पहले पार्टी छोड़कर जाने वाले जो भी नेता वापस आना चाहते हैं उन्हें पार्टी से लिखित माफी मांगनी होगी। इसके बाद ही उन्हें दोबारा शामिल करने पर विचार किया जाएगा। दरअसल पार्टी छोड़कर जाने वाले इन नेताओं ने कई क्षेत्रों में काफी नुकसान भी पहुंचाया था। माना जा रहा है कि अगले कुछ दिनों में पार्टी के पास ऐसे माफीनामों का ढेर लगने वाला है क्योंकि मध्य प्रदेश में पार्टी की सरकार है।

आपका पक्ष

रीपो दर में कटौती, लेकिन फायदा नहीं

रिजर्व बैंक ने लगातार चौथी बार रीपो दर कम की और अब नई रीपो दर 5.40 प्रतिशत है। रिजर्व बैंक रीपो दर में कमी कर देश के बैंकों को उससे सस्ते में कर्ज लेने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है। ताकि इस कदम से बैंक अपने ग्राहकों को सस्ता ऋण दे सके तथा देश की अर्थव्यवस्था को गति मिल सके। लेकिन देश के कई बैंक अभी बुरे दौर से गुजर रहे हैं। रिजर्व बैंक से सस्ती दर पर ऋण लेने के बावजूद इसका लाभ बैंक अपने ग्राहकों को नहीं दे रहा है। बैंकों का एनपीए बढ़ रहा है जिससे वे नुकसान में चल रहे हैं। इस नुकसान की भरपाई के लिए बैंक अपनी ऋण दर में कमी नहीं कर रहे हैं। ऋण दरें अधिक होने के कारण बैंक के ग्राहक भी ऋण लेने से हिचकिचा रहे हैं। इससे बाजार में नकदी कम हो गई है जिसका बुरा प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा है। इसके अलावा बैंक ने चालू वित्त वर्ष में जीडीपी वृद्धि दर का अनुमान 7 प्रतिशत से घटाकर 6.9 कर दिया है। यह स्थिति देश की अर्थव्यवस्था के मंदी के साये में होने का संकेत देती है। वहीं चीन ने अपनी मुद्रा युआन का अवमूल्यन कर दिया है जिससे चीनी वस्तुओं की कीमत देश में और भी कम हो जाएगी। इससे घरेलू प्रतिस्पर्धी उद्योगों को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

भारतीय रिजर्व बैंक ने लगातार चौथी बार रीपो दर में कटौती की है

उद्योगों को महंगा कर्ज मिल रहा है जिससे वे सस्ती लागत में उत्पादन में करने में नाकाम हो रहे हैं। वर्तमान में देश बेरोजगारी एवं छंटनी के दौर से गुजर रहा है। संसद के मॉनसून सत्र में भी अर्थव्यवस्था पर कोई ठोस चर्चा नहीं हुई जिससे अर्थव्यवस्था पर सरकार द्वारा उठाए जाने वाले कदमों का भी पता नहीं चल पा रहा है।

निशांत महेश त्रिपाठी, नागपुर

एनबीएफसी द्वारा ऋण देने की मंजूरी

गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां (एनबीएफसी) अब कृषि और छोटे उद्यमों को निवेश के लिए ऋण दे सकेंगे। रिजर्व बैंक ने बुधवार को मौद्रिक समीक्षा में यह बात कही है। इससे पहले रिजर्व बैंक ने एनबीएफसी के लिए कई दिशानिर्देश जारी किए थे। आज कई कंपनियां एनबीएफसी क्षेत्र में उतर गई हैं। एनबीएफसी से लेनदेन के लिए ग्राहकों को केवाईसी करना जरूरी किया गया है। एनबीएफसी में पेटीएम सर्वोत्तम उदाहरण है। यह कंपनी भुगतान में काफी लोकप्रिय है। हर छोटे से छोटे भुगतान पेटीएम के जरिये किया जा सकता है। रिजर्व बैंक द्वारा जारी नए निर्देश में एनबीएफसी को 10 लाख रुपये तक कृषि ऋण, सूक्ष्म एवं लघु उद्यों को 20 लाख रुपये तथा आवास के लिए प्रति कर्जदार 20 लाख रुपये (फिलहाल 10 लाख रुपये) के कर्ज देने का प्रावधान किया गया है। रिजर्व बैंक के इस कदम से बाजार में तरलता आएगी और पूंजी का प्रवाह बढ़ेगा। इससे एनबीएफसी कंपनियों तथा ग्राहकों को भी लाभ मिल सकेगा। वर्तमान में देश की अर्थव्यवस्था मंदी के दौर से गुजर रहा है। रिजर्व बैंक के निवर्तमान गवर्नर रघुराम राजन ने काफी सूझबूझ तथा अपनी नीतियों से देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत किया था। हालांकि वर्तमान गवर्नर शक्तिकांत दास भी इसी कोशिश में हैं और एनबीएफसी पर उठाए गए कदम सराहनीय हैं।

प्रिया सिंह, नोएडा

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।